ISSN : 2348-1757
Indian Journal of Dalit and Tribal Studies (IJDTS)
Volume-7, Issue-2, July-Dec. 2019, pages 119-125

आजादी के सात दशक बाद कहाँ खड़ा है भारतीय लोकतंत्र

*** डॉ. सुनील कुमार 'सुमन'**

भारतीय संविधान के लागू होने के समय बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने कहा था कि ''जब तक राजनीतिक लोकतंत्र की बुनियाद में सामाजिक लोकतंत्र स्थित नहीं होगा तब तक राजनीतिक लोकतंत्र की इमारत स्थिर और टिकाऊ नहीं हो सकती।''[1] स्पष्ट है कि डॉ. अम्बेडकर के लिए भारत जैसे देश में सामाजिक लोकतंत्र का मतलब बहुत ज्यादा था। उन्हें यहाँ की गैर-बराबरी पर आधारित सामाजिक संरचना का गहराई से ज्ञान था, इसलिए वे इस बात पर जोर दे रहे थे। आगे वे 'सामाजिक लोकतंत्र' का अर्थ भी स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि ''सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है एक ऐसा जीवन जीने का ढंग जो जीवन के आधारभूत सिद्धांतों के रूप में स्वतन्त्रता, समानता और बंधुता को स्वीकार करता हो।''[2] जाहिर है कि तब इस तरह का माहौल बिल्कुल नहीं था। लेकिन क्या आज ऐसा वातावरण है? क्या सामाजिक लोकतंत्र का सपना पूरा हो चुका है? डॉ. अम्बेडकर की इस संकल्पना को लगभग सत्तर साल हो चुके हैं, लेकिन उनकी यह उक्ति अभी भी एक जरूरी सवाल बनकर खड़ी है। संविधान ने तो सबको बराबर का अधिकार दे दिया। जाति-धर्म, लिंग, क्षेत्र, सम्प्रदाय, भाषा, नस्ल आदि सभी आधारों पर समानता दी गई। छुआछूत, लिंगभेद, नस्लवाद, सांप्रदायिकता आदि सभी तरह के भेदभाव को गैर-कानूनी घोषित किया गया। संविधान की वजह से देश के हर नागरिक को मौलिक अधिकार मिले। सबसे बड़ी बात कि वोट देने का हक हासिल हुआ, लेकिन सामाजिक लोकतंत्र के अभाव में ज्यादातर आम जनता इन अधिकारों को अब तक न जान पाई है, न ठीक से समझ पाई है। इसका फायदा यहाँ के तिकड़मी नेता, धार्मिक-सांस्कृतिक ठेकेदार, पूंजीवादी-मनुवादी लोग उठाते आ रहे हैं। जाति-धर्म, सम्प्रदाय, लिंग-भाषा,

*** प्रभारी, क्षेत्रीय केंद्र, कोलकाता, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

क्षेत्र में लोगों को बांटकर लूट-खसोट और शोषण-उत्पीड़न का सिलसिला अभी तक नहीं रुका है। आजादी के इतने वर्षों बाद अभी भी बहुसंख्यक जनता सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक गुलामी में फंसी हुई है। पहले लोग हैजा-प्लेग जैसी महामारियों के चलते मरते थे, अब रैलियों, मंदिरों और रेलवे स्टेशनों पर मची भगदड़ में बेमौत मारे जाते हैं। सांप्रदायिक और जातीय दंगों में निर्दोष जनता अपनी जान गँवाती है। अस्पतालों में ऑक्सीजन की कमी के चलते बच्चे मारे जाते हैं। लेकिन सरकारों को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जाहिर है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी भारत की राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक सत्ता यहाँ के सवर्ण समाज के कब्जे में रही है। संविधान के लागू होने के समय डॉ. अम्बेडकर की आशंका का मूल आधार कुछेक जातियों का यहाँ के सारे संसाधनों पर वर्चस्व ही था।

इस देश के दलित-आदिवासी-ओबीसी और अल्पसंख्यक अभी भी तमाम तरह के भेदभाव और अन्याय-अत्याचार के शिकार हैं। अगर बात आदिवासी समाज की हो तो जो समुदाय सदियों से जल-जंगल-जमीन का संरक्षण करता आ रहा है, आज वही उससे बेदखल किया जा रहा है। पूरे आदिवासी इलाकों में ब्राह्मणी पूंजीवाद का लूटतंत्र कायम है। आदिवासियों को लगातार तरह-तरह से प्रताड़ित किया जा रहा है। यह लोकतंत्र का मजाक ही है कि आदिवासी क्षेत्रों में आज बारह साल के बच्चे से लेकर सत्तर साल के आदिवासी बुजुर्ग भी 'नक्सल' के नाम पर जेलों में बंद हैं। इन मूलनिवासियों के लिए भारत की न्याय व्यवस्था का कोई मतलब नहीं है। पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों को खुली छूट मिली हुई है कि वे जितना हो सके आदिवासियों का दमन करें, ताकि ये लोग अपनी जमीन को छोड़कर भाग जाएं या मर-खप जाएं। आदिवासी युवतियों के साथ शारीरिक बदसलूकी और बलात्कार की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। विरोध करने वालों को 'नक्सली' करार देना आज सरकारी फैशन बन गया है। आदिवासी क्षेत्रों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कुनबे के संगठन धार्मिक जहर फैलाने के काम में जुटे हुए हैं। आदिवासी भाषाओं में गीता-रामायण का अनुवाद कराकर बांटा जा रहा है। आदिवासियों की अपनी मूल संस्कृति बाहरी घुसपैठ के चलते लगातार बर्बाद हो रही है। तेजी से उनका हिन्दुकरण किया जा रहा है। झारखंड में ईसाई और गैर-ईसाई आदिवासी का झगड़ा शुरू कर दिया गया है। आगे चलकर यह बहुत विस्फोटक साबित होने वाला है। मानसिक गुलाम आदिवासी नेताओं की फौज तैयार कर दी गई है। यही सब कारण हैं कि आदिवासी बहुल राज्यों में ज्यादातर

भाजपा का ही शासन रहा है।

सदियों से चलती आ रही छुआछूत की प्रथा आज भी किसी-न-किसी रूप में जारी है। दलित-दमन की घटनाएं इस देश के माथे पर एक कलंक की तरह हैं। ऊना, गुजरात से लेकर सहारनपुर तक की घटनाएं भाजपा सरकार के लिए शर्म और लानत की तरह हैं। ऐसा लग रहा है, जैसे दलित उत्पीड़न का रिकॉर्ड बनाया जा रहा हो! देश भर के विश्वविद्यालय बहुजन छात्रों एवं शिक्षकों के उत्पीड़न के अड्डे बनते जा रहे हैं। रोहित वेमुला वाली घटना राष्ट्रीय त्रासदी की तरह है। लेकिन यह सिलसिला अभी रुका नहीं है। वंचित तबके के विद्यार्थियों-प्राध्यापकों को प्रताड़ित करने के तरह-तरह के फॉर्मूले मनुवादियों, अध्यापकों और कुलपतियों के पास होते हैं। ऐसा नहीं है कि भारतीय संविधान में शोषित-पीड़ित समुदाय के लिए अधिकार नहीं दिए गए हैं। ''कानूनन वंचित जमात के अधिकार तो सुरक्षित हैं, लेकिन वह सिद्धांत मात्र है। समाज, देश, संस्थाएं अभी भी सदियों पुरानी प्रथाओं से संचालित हैं। वंचित समाज का कोई भी व्यक्ति सुरक्षित नहीं है—चाहे मंत्री हो, संतरी हो, अधिकारी हो, प्रोफेसर, कोई भी। प्रताड़ना के रूप अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन प्रताड़ित सब हैं। प्रथाओं के पालकों की हाँ-में-हाँ मिलाते हैं तो कोई बात नहीं। जहाँ सवाल उठाए आपकी गर्दन काट दी जाएगी।''[3] ब्राह्मणवादी व्यवस्था को सबसे अधिक दिक्कत वंचितों द्वारा सवाल खड़ा करने से है। मानसिक गुलाम दलित-आदिवासी को सब पसंद करते हैं और अगर वह ओबीसी हो तो उसको मनुवादी समाज सबसे बड़ा 'हिन्दू' बताएगा। लेकिन जब उसके संवैधानिक हकों की बात आती है तो ये सारा हिन्दुत्व गायब हो जाता है। दिलचस्प है कि राम मंदिर जैसे तमाम धार्मिक व कर्मकांडी प्रसंगों एवं आन्दोलनों के लिए ओबीसी का खूब इस्तेमाल किया जाता रहा है, लेकिन अगर उन्हीं ओबीसी लोगों के लिए जब-जब उच्च शिक्षा में आरक्षण लागू करने की बात आई तो यही हिन्दुत्व के ठेकेदार विरोध करने वालों में सबसे आगे खड़े रहे। ये छद्म राष्ट्रवादी दलित-आदिवासियों को भी हमेशा हिन्दू धर्म के दायरे में ही रखना चाहते हैं ताकि इनसे अपनी गुलामी करवा सकें। लेकिन जैसे ही इन वर्गों के आरक्षण, एससी/एसटी एक्ट जैसे संवैधानिक प्रावधानों की बात आती है तो ये छद्म राष्ट्रवादी बड़ी बेशर्मी के साथ विरोध करने के लिए सड़कों पर उतर आते हैं। इन्हें डॉ. अम्बेडकर और उनके संविधान से भी सख्त नफरत है। भाजपा शासन काल में भारत के संविधान का खुलेआम दहन किसी राष्ट्रीय कलंक से कम नहीं। जातिवादी सवर्णों का यह

दोहरापन ही है कि जिस संविधान की वजह से वे पढ़ाई-लिखाई और नौकरी करते हैं, सुरक्षित और सुखी जीवन बिताते हैं, उसी संविधान से उन्हें चिढ़ भी उतनी ही होती है। इसका एकमात्र कारण सामाजिक लोकतंत्र कायम करने के लिए वंचित समुदाय को दिए गए कतिपय संवैधानिक अधिकार हैं। इससे सवर्णों का वर्चस्व कम होगा और उनकी जन्मना श्रेष्ठता भी टूटेगी।

दरअसल यह सारा मामला गंदी मानसिकता का है। ऊँचे कहे जाने वाले समाज के मन में वंचित समुदायों को लेकर अभी भी जातिगत नफरत भरी हुई है और यह देश अभी तक इससे मुक्त नहीं हो पाया है। ब्राह्मणवादी व्यवस्था द्वारा शोषण-उत्पीड़न के कई तरीके अपनाए जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में संवैधानिक प्रावधानों के चलते एससी-एसटी और ओबीसी तबके के जीवन में जो थोड़ी तरक्की आई है, अब वही मनुवादियों को बर्दाश्त नहीं हो रही है। फलतः सरकारी नौकरियां तेजी से खत्म की जा रही हैं ताकि आरक्षण अपने-आप बेमानी और निष्प्राण हो जाए। देश भर के तमाम सरकारी संस्थानों में बैकलॉग के हजारों पद खाली पड़े हुए हैं। सरकार की नीयत ही खराब है। निजीकरण ने पहले ही बहुजन समुदाय के लिए रोजगार के अवसर न्यूनतम कर दिए हैं। छात्रों को दी जाने वाली फेलोशिप खत्म की जा रही है। इन सबके लिए छात्र पढ़ाई-लिखाई छोड़कर सड़कों पर उतरने के लिए मजबूर हो रहे हैं और लाठी खा रहे हैं। उच्च शिक्षा का सबसे ज्यादा बुरा हाल है तो प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा भी कम बदहाल नहीं है। हर जगह मिड डे मिल में घोटाले और खराब भोजन की शिकायतें आम बात है। इसमें जातिगत भेदभाव की खबरें भी आती रहती हैं। अर्थात शिक्षण संस्थान 'मनु' और 'द्रोणाचार्यों' से सुसज्जित हैं। ऐसे में वंचित तबके की बर्बादी के लिए क्या-क्या हो सकता है, यह सब यहाँ बताने की जरूरत नहीं है। इसके पीछे के मनोविज्ञान को बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने बहुत पहले ही गहराई से जान-समझ लिया था। विशेषकर दलितों के सन्दर्भ में इसकी सविस्तार विवेचना करते हुए वे अपनी प्रसिद्ध किताब अनटचेबल्स एंड द चिल्ड्रेन ऑफ इंडियाज घेट्टो में लिखते हैं कि ''अस्पृश्यों के प्रति भेदभाव हिन्दुओं की उन गंभीर और तीव्र तिरस्कार की भावनाओं की प्रतिच्छवि है जो कानून और प्रशासन में भी मिलती हैं, यह कानून और प्रशासन अस्पृश्यों के विरुद्ध हिन्दुओं और उनमें भेदभाव को उचित ठहराता है। इस भेदभाव का मूल हिन्दुओं के हृदयों में बसे हुए इस भय में निहित है कि मुक्त समाज में अस्पृश्य अपनी निर्दिष्ट स्थिति से ऊपर उठ जाएंगे

और हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा बन जाएंगे, जिसका आधारभूत आदर्श अस्पृश्यों की तुलना में हिन्दुओं की वरीयता और उनके प्रभुत्व को बनाए रखना है। जब तक यह हिन्दू सामाजिक व्यवस्था बनी रहेगी, तब तक अस्पृश्यों के प्रति भेदभाव भी बना रहेगा।''[4] गौरतलब है कि यह हिन्दू सामाजिक व्यवस्था तभी टूटेगी, जब वंचित समाज इससे मुक्ति प्राप्त करेगा। इसी कारण डॉ. अम्बेडकर ने हमेशा तार्किकता पर आधारित वैज्ञानिक सोच से परिपूर्ण समाज व्यवस्था की वकालत की। अपने अंतिम दिनों में उनके द्वारा बौद्ध धर्म को ग्रहण करना भी एक बड़ी दूरगामी युक्ति थी। यह उनके सपनों का समतामूलक समाज बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल थी।

2014 में जब से केंद्र और कुछ राज्यों में भाजपा सरकार आई, तब से मुस्लिमों पर लगातार हमले बढ़े हैं। गाय के नाम पर सरेआम गुंडागर्दी मची हुई है। जब, जिसको ये गौ-गुंडे चाहते हैं, गाय के नाम पर पीट-पीटकर मार डालते हैं। अखलाक से लेकर जुनैद तक चीख-चीखकर इनकी नृशंस कहानियाँ बता रहे हैं। इन गुंडे-मवालियों को भाजपाई सरकारों की तरफ से पूरा संरक्षण प्राप्त है। रह-रहकर मुसलमानों के खिलाफ कुछ भाजपाई नेताओं-मंत्रियों के बेतुके, मूर्खतापूर्ण और भड़काऊ बयान आते रहते हैं। दरअसल ये लोग चाहते हैं कि इस देश में चारों तरफ अराजकता का माहौल कायम हो जाए और संविधान को निष्प्रभावी बना दिया जाए ताकि 'हिन्दू राष्ट्र' का रास्ता सुगम हो सके। निर्भया काण्ड के बाद बलात्कार और महिला उत्पीड़न की खबरें मीडिया में खुलकर आने लगी हैं। उससे पहले सदियों से दलित महिलाओं के साथ अमानवीय अत्याचार होते रहे हैं, जो खबरों का हिस्सा कभी नहीं रहे। अभी भी आदिवासी महिलाओं के साथ हो रहे शारीरिक दमन की खबरें उन इलाकों से बाहर नहीं आ पाती हैं। भाजपा सरकार ने एक शगूफा छोड़ा है—'बेटी पढ़ाओ बेटी बचाओ'! यह भी इनके तमाम जुमलों में से एक जुमला मात्र है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में छेड़खानी का विरोध कर रही लड़कियों पर बर्बरता से लाठीचार्ज ये ही लोग करवाते हैं। गाँव से लेकर महानगर तक कहीं महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं। दुनिया आधुनिक तकनीक के रास्ते पर चलते हुए कहाँ से कहाँ पहुँच गई और भारत के सबसे शिक्षित राज्य केरल के सबरीमाला मंदिर में प्रवेश के लिए अभी महिलाओं को खूनी संघर्ष झेलना पड़ रहा है। न्यायालय द्वारा इजाजत मिलने के बावजूद अंधविश्वास और मानसिक गुलामी की ही जीत होती दिख रही है। इसके पूर्व महाराष्ट्र के शनि शिंगणापुर

मंदिर में पहली बार न्यायालय की अनुमति से वर्षों पुरानी दकियानुस परम्परा खत्म हुई और उसमें महिलाओं के प्रवेश का रास्ता साफ हुआ। इस क्रम में हाजी अली दरगाह समेत तमाम मुस्लिम धर्मस्थलों में प्रवेश के लिए इस वर्ग की महिलाओं की तरफ से दबे मुंह स्वर निकलने लगे हैं। सदियों से देवदासी प्रथा का कलंक भी इसी देश के नाम दर्ज है। क्या इसी लोकतंत्र का सपना हमारे संविधान निर्माताओं ने देखा था? क्या महिला सशक्तिकरण के लिए बाबासाहेब ने यही दिन देखने के लिए इतनी ताकत लगाई थी? महिला आरक्षण बिल आज भी संसद में लटका हुआ है। इसी भारत में हिन्दू कोड बिल लागू न करने के चलते डॉ. अम्बेडकर ने मंत्रीपद से इस्तीफा तक दे दिया था। यह सब भारतीय समाज भूल गया? आज इस देश के लोग यह कौन सी विरासत लेकर ढो रहे हैं?

बाबासाहेब ने कृषि व्यवस्था खासकर सिंचाई के साधनों, बाँध प्रबंधन जैसे जरूरी चीजों पर अपनी तमाम कार्य योजनाएं प्रस्तुत की थीं, जिन्हें बाद की सरकारों ने कभी अमल में लाया ही नहीं। यदि वह सब लागू हुआ होता तो इस देश को किसानों को आत्महत्या का दंश अपने माथे पर लेकर नहीं रहना पड़ता। डॉ. अम्बेडकर ने सबसे पहले 'स्वतंत्र मजदूर दल' का गठन किया था। बाद में जब श्रम कानून बनाए गए तो उन्होंने श्रमिकों, खासकर महिला कामगारों के लिए कई मानवीय प्रावधान रखे, जिन्हें आज तक सही तरीके से लागू नहीं किया गया। बाल मजदूरी और वेश्यावृत्ति जैसी अमानवीय परम्परा को यह देश आज भी ले चलने को अभिशप्त है। यह सब आजादी के सत्तर सालों बाद भी बदस्तूर जारी है। हम सब एक शर्मनाक समय में जी रहे हैं। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि यहाँ सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना आज तक नहीं हो पाई। यहाँ का बहुसंख्यक समाज अभी भी ब्राह्मणी व्यवस्था का सांस्कृतिक गुलाम बनकर जी रहा है। राजनीतिक सत्ता हमेशा से मनुवादी लोगों के पास ही बनी रही। वंचित तबके में आरक्षण की वजह से कुछ लोग शिक्षित तो हो गए, लेकिन चेतनाशील नहीं हो पाए। आज इसी चेतनाशीलता की सबसे ज्यादा जरूरत है। जरूरत है एक वैचारिक क्रांति की, एक परिवर्तनकामी आन्दोलन की। सामाजिक-सांस्कृतिक लोकतंत्र को स्थापित करने के लिए यहाँ का बहुजन समाज ही यह क्रांतिकारी बदलाव ला सकता है। इसमें पसमांदा मुस्लिम समाज की भूमिका भी महत्वपूर्ण होगी। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के इस कथन को हमेशा याद रखना चाहिए, जब वे आह्वान करते हुए कहते हैं कि ''न्याय हमारे पक्ष में है इसलिए मुझे नहीं लगता कि हम

अपनी लड़ाई हार सकते हैं। हमारे लिए यह संघर्ष संपत्ति या सत्ता के लिए नहीं है। हमारा संघर्ष अपने मानवीय व्यक्तित्व को पुनः प्राप्त करने के लिए है।''[5]

जाहिर है कि हमें किसी भी हाल में अपने संविधान को मजबूत और सुरक्षित रखना है। बाकी यह भी ध्यान में रखना होगा कि किसी भी देश का लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है, जब वहां की जनता सजग हो। भारत के वर्चस्ववादी लोगों ने धार्मिक अंधविश्वास, कर्मकांड और पोंगा-पंथी का ऐसा अफीम फैलाया हुआ है कि इसमें अधिकांश वंचित समाज खुद अपने हाथों अपनी बर्बादी की कहानी लिख रहा है और मनुवादी लोग हर तरह की मलाई खा रहे हैं। आज की परिस्थिति में सभी तरक्कीपसंद लोगों को साथ लेकर बहुजन महापुरुषों की वैचारिकी के रास्ते पर आगे बढ़कर ही हम आम जनता में वैज्ञानिक एवं तार्किक चेतना भर सकते हैं। इस देश में संवैधानिक तरीके से एक सीधी लड़ाई लड़नी होगी, जो मनुवाद और अम्बेडकरवाद के बीच होगी। इसके लिए कई स्तरों पर प्रयास करने की जरूरत है। तमाम पढ़े-लिखे लोगों को 'पे बैक टू सोसायटी' के तहत आगे आना होगा। बड़े स्तर पर वैचारिक जंग छेड़कर ही हम अपना रास्ता तैयार कर सकते हैं। यही संघर्ष सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना करेगा, जो आगे चलकर राजनीतिक लोकतंत्र की जमीन को मजबूत बनाएगा और यह देश तब सही अर्थों में उस मंजिल की तरफ बढ़ेगा, जिसका सपना हमारे तमाम महापुरुषों ने देखा था।

संदर्भ :

1. सुभाष चंद्र (संपादक) अम्बेकर से दोस्ती : समता और मुक्ति, साहित्य उपक्रम, 2012, पृष्ठ सं. 34
2. वही, पृष्ठ सं. 34
3. डॉ. रतन लाल, और कितने रोहित, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ सं. 23
4. सुभाष चंद्र (संपादक) अम्बेकर से दोस्तीःसमता और मुक्ति, साहित्य उपक्रम, 2012, पृष्ठ सं. 89-90
5. डॉ. रतन लाल, और कितने रोहित, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016 पृष्ठ सं. 10

*****